इतिहास की खोज

खोद निकाला एक गांव

सी. एन. सुब्रह्मण्यम

इनामगांव न कभी किसी साम्राज्य का केंद्र रहा, न ही यहां कोई 'महापुरुष' पैदा हुए, न ही यह किसी महान ऐतिहासिक घटना का केंद्र रहा। फिर भी यहां 3600 साल पहले रहने वाले लोग कुछ खास ज़रूर थे। उन्होंने एक ऐसे क्षेत्र में 600 से अधिक वर्षों तक संपन्न जीवन बिताया जहां आज के लोग बगैर सरकारी अनुदान के गुज़ारा कर पाना मुश्किल पाते हैं। दक्षिणी महाराष्ट्र का यह भाग एक अत्यंत सूखाग्रस्त इलाका है। बताया जाता है कि यहां हर 50 साल में से 11 साल सूखाग्रस्त होते हैं और उनमें से भी 7 साल तो कठिनतम सूखे के। तो सवाल है कि 3600 साल पहले इस इलाके में लोगों ने ऐसा क्या नुस्खा निकाला था कि वे संपन्न जीवन बिता पा रहे थे।

जब कभी हम पुरातत्व या खुदाई की बात सोचते हैं तो हमारे मन में बड़े-बड़े शहरों, भव्य मंदिरों व प्रासादों की कल्पना उभरती है। सुंदर मूर्तियां, हीरे-सोने के जवाहरात, सिक्के..... न जाने क्या-क्या अजीबो-गरीब चीज़ों को देखने की आशा बंध जाती है। लेकिन आप यकीन कर पाएंगे कि कहीं खुदाई हो रही हो और खुदाई करने वाले लोग प्राचीन घरों की धूल में से चूहों की लेंड़ी की खोज करें और यह जानकर परेशान हों कि लेंड़ी की मात्रा किसी काल में कम हो रही है तो किसी में ज़्यादा। और-तो-और वे इस बात के पीछे भी पड़े हों कि ये लेंड़ियां चूहों की हैं कि मूसों की...! अगर कोई इस बात को लेकर बहुत चिंतित हो जाए कि फलां काल में कुत्तों की हड्डियां टूटी और जली हुई मिल रही हैं, तो शायद आप यही सोचेंगे कि साहब का दिमाग ज़रा 'सरक' गया है। ऐसे ही 'सरके' हुए लोगों की एक टोली, डेक्कन कॉलेज पुणे से निकल-कर महाराष्ट्र के एक गांव, इनामगांव पर लगातार कई साल धावा बोलती रही,

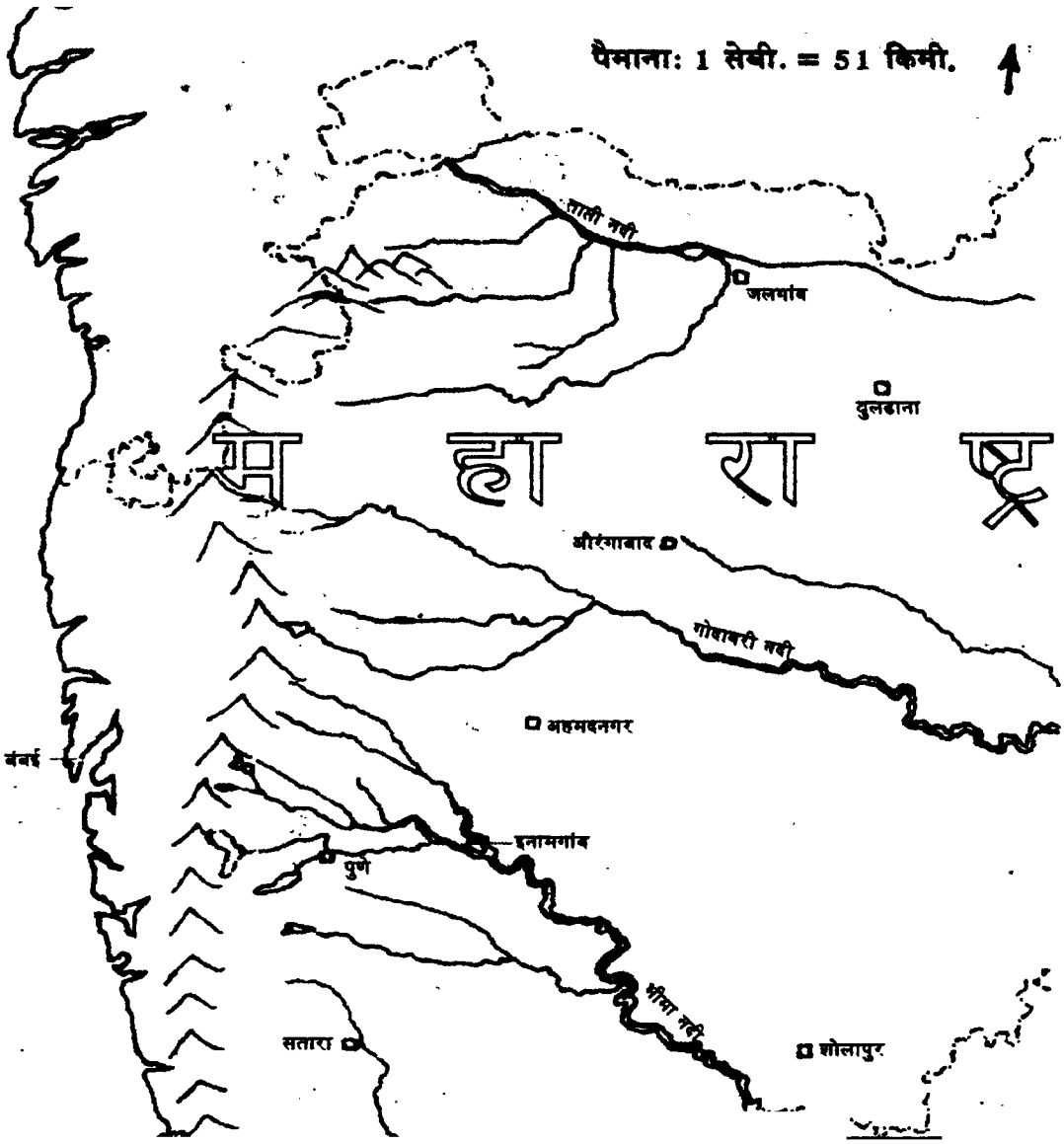

खुदाई कर-करके बारीक-से-बारीक चीज़ों को इकट्ठा करती रही और नोट करती रही कि कहां, क्या, किस हालात में मिला। इलाका बहुत बड़ा नहीं था – बस यही कोई पांच हेक्टेयर।

आखिर इन पांच हेक्टेयर में रहने वाले उन प्रागैतिहासिक लोगों की खासियत क्या थी कि कोई उन पर इतनी मेहनत करे? इनामगांव न कभी किसी साम्राज्य का केंद्र रहा, न ही यहां कोई 'महापुरुष' पैदा हुए, न ही यह किसी महान ऐतिहासिक घटना का केंद्र रहा। फिर भी यहां 3600 साल पहले रहने वाले लोग कुछ खास जरूर थे। उन्होंने एक ऐसे क्षेत्र में 600 से अधिक वर्षों तक संपन्न जीवन बिताया जहां आज के

लोग बगैर सरकारी अनुदान के गुजारा कर पाना मुश्किल पाते हैं। दक्षिणी महाराष्ट्र का यह भाग एक अत्यंत सूखाग्रस्त इलाका है। बताया जाता है कि यहां हर 50 साल में से 11 साल सूखाग्रस्त होते हैं और उनमें से भी 7 साल तो कठिनतम सूखे के। तो सवाल है कि 3600 साल पहले इस इलाके में लोगों ने ऐसा क्या नुस्खा निकाला था कि वे संपन्न जीवन बिता पा रहे थे। और वह भी ऐसी स्थिति में जब कि शायद ही वे हल-बैल का इस्तेमाल करते हों। ध्यान रहे कि उन दिनों लोहे का प्रचलन नहीं था।

लेंड़ियों और हड्डियों से इतिहास

चूहे की लेंड़ियों और कुत्तों की हड्डियों से इन बातों का क्या ताल्लुक? किसी घर में पाई जाने वाली चूहों की लेंड़ियों की मात्रा से उस घर में संचयित अनाज का अनुमान लगाया जा सकता है। ज़ाहिर है कि चूहे अनाज के गोदामों के इर्द-गिर्द रहना पसंद करते हैं। अगर खुदाई से यह पता चले कि किसी एक काल में लेंड़ियों की मात्रा बढ़ती जा रही है और किसी बाद के काल में उनकी संख्या अचानक कम हो जाती है तो यह अनुमान स्वाभाविक है कि पहले वाले कालखण्ड में खेती-बाड़ी उन्नत अवस्था में थी और दूसरे में किन्हीं कारणों से खेती में गिरावट आई होगी। चूहों की बहुलता खेती के लिए खतरनाक भी है – वे न केवल अनाज को खा जाते हैं, बल्कि खड़ी फसल को भी नष्ट कर देते हैं। और फिर उनकी वजह से प्लेग जैसी महामारी भी फैल सकती है। अतः चूहे की लेंड़ी काफी महत्वपूर्ण चीज़ हो जाती है।

इसी तरह कुत्तों की हड्डियों को कमतर आंकना सही नहीं होगा। यह बात किसी भी देश या संस्कृति के लिए आमतौर पर सही मानी जाती है कि अगर मनुष्य किसी जानवर को अपना मित्र मानता है और उसे अपने परिवार का सदस्य मानता है तो वह कुत्ता है। जब आपको इशारा मिले कि मनुष्य कुत्ते को खा रहा था तो आप निश्चय ही अनुमान लगा सकते हैं कि परिस्थितियां काफी कठिन रही होंगी। जानवरों की हड्डियां जब टूटी हुई और जलाई गई मिलती हैं तो यह समझा जाता है कि उन्हें मनुष्य ने खाने के लिए उपयोग किया है। इनामगांव भारत के प्रागैतिहासिक स्थलों में से एकमात्र है जहां इस तरह कुत्तों को खाने की प्रथा दिखती है। वह भी एक खास दौर में।

इनामगांव में खुदाई के वक्त ढूंढी जा रही चूहों की लेंड़ियां और कुत्तों की हड्डियां यह जानने के लिए महत्वपूर्ण हैं, कि वहां के लोग इस सूखाग्रस्त इलाके में कैसे गुजारा करते थे। लेकिन पूरा मामला काफी पेचीदा है। चलिए इसी विषय पर कुछ और जानकारी हासिल करें।

इनामगांव - एक सरसरी निगाह

मालवा से आए लोग: हम यह तो पहले ही बता चुके हैं कि इनामगांव कहां पर बसा है। अब देखें यहां लोग कब से बसने लगे। इनामगांव में बसाहट का इतिहास शुरू होता है, आज से 3600 साल पहले। यह वो समय था जब सिंधु

घाटी के शहर उजड़ने लगे थे और दूर उत्तर-पश्चिम में संस्कृत बोलने वाले कबीले आकर बसने लगे थे। उन्हीं दिनों मालवा में एक कृषक समाज पनप रहा था। ऐसा लगता है कि 3600 साल (ई.पू. 1600) पहले के करीब इन लोगों में से कुछ महेश्वर से दक्षिण की ओर फैलने लगे और ताप्ती व गोदावरी नदियों की घाटियों से होते हुए महाराष्ट्र के दक्षिण तक आ पहुंचे। रास्ते में उनमें से कई लोग जगह-जगह बसते गए। ये लोग इतने दक्षिण में, वो भी एक सूखे इलाके में आकर क्यों बसे इसके बारे में पक्के तौर पर कुछ कह पाना मुश्किल है। जो भी हो, इनामगांव में मालवा के कृषक समाज से संपर्क रखने वाले लोग ई.पू. 1600 तक बस गए थे। इन लोगों की खास पहचान यही थी कि वे वैसे ही बर्तन-भांडे उपयोग करते थे जैसे कि मालवा के लोग उस समय करते थे। करीब 200 वर्ष तक उनकी यह पहचान बनी रही और उसके बाद पश्चिमी महाराष्ट्र के कृषक समाजों की अपनी एक संस्कृति विकसित होने लगी। इसे हम आज **जोर्वे संस्कृति*** कहते हैं।

ई.पू. 1600 से 1400 तक का काल (मालवा-काल) हालांकि बहुत संपन्न समय नहीं था, फिर भी इस काल में लोगों का जीवन विकासोन्मुख दिखता है। लोग शिकार, पशुपालन और खेती तीनों से अपना गुजारा करते थे। वे जौ, दाल, मटर, मोठ, आदि उगाते थे और चौकोर घरों में रहते थे। उस समय कई घर जमीन को खोदकर बनाए थे।

ई.पू. 1400 से 1000 तक (ज काल 1) : यह इनामगांव का स संपन्न काल था। इस दौर में यहां लग एक हजार लोग रहते थे, उनके घरों आकार चौकोर था और वे काफी भी थे। इन लोगों का दूर दराज के इला से लेन-देन का संबंध था – गुजरा कर्णाटका, कोंकण आदि प्रदेशों की चं इनामगांव में उपयोग होने लगी थीं। खुद से पता चलता है कि इन्होंने अप संपन्नता को बचाने के लिए बस्ती चारों ओर मिट्टी की दीवार से किलेबं भी की थी।

ई.पू. 1000 से 700 तक (जे काल 2) : जैसा कि बहुत-सी सुख कहानियों का एक दुखद अंत होता इनामगांव को भी ये दिन देखने पड़े। इ काल में आबादी घटी, हर क्षेत्र में जीव -स्तर गिरा, और समय के चलते पू बस्ती वीरान होकर उजड़ गई।

संपन्नता और ह्रास की इसी कहा को जरा बारीकी से देखें।

जले दानों से पूछो

हमें यह कैसे पता चलता है f 3600 साल पहले लोग क्या-क्या उगा थे? आखिर अनाज या दाने तो इत दिनों में जरूर सड़कर खत्म हो जाते

* यहां संस्कृति से मतलब उनके रहन-सहन, जीवन पद्धति से है। जो मालवा के लोगों से भिन्न होने लग थी। सबसे पहले इस परिवर्तन का पता महाराष्ट्र में जोर्वे नाम की जगह से चला इसलिए इसे जोर्वे संस्कृ कहते हैं।

ले दानों से इतिहासः कैसे मालूम पड़ा कि इनामगांव के लोग क्या-क्या उगाते थे? इसकी ानकारी मिली जले हुए दानों से। इस दौर के लोग अनाज पीसने के लिए सिल-बट्टे का इस्तेमाल रते थे। अगर दानों में नमी हो तो उन्हें पीसना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए दानों को भूंज लेया जाता है। भूंजने की इस प्रक्रिया में काफी सारे दाने जल भी जाते हैं। ऐसे ही जले हुए दानों ो इनामगांव के लोग बाहर कूड़े में फेंक देते थे। जले हुए यह दाने सैंकड़ों साल तक सुरक्षित रह कते हैं। इस गांव के कूड़े से जो अनाज मिले वे थे — गेहूं, जौ, अरहर, मटर, मोठ, वाल, ज्वार, ागी, उड़द, मूंग, चना, खेसरी दाल और चावल।

ापको यह पढ़कर हैरानी होगी कि इस ांव में अनाज के दाने मिले — लेकिन ले हुए। जले दाने खराब नहीं होते हैं, और सैकड़ों साल तो क्या हज़ारों साल ुरक्षित रहते हैं। क्या वे सब अनाज़ के ाने जलाकर सुरक्षित इसलिए रखे गए ताकि आज के इतिहासकार पता कर कें कि उस समय लोग क्या-क्या ाते थे?!

वास्तव में होता यह है कि जो लोग नाज़ को सिल-बट्टे पर पीसकर खाते , वे पहले अनाज को अच्छे से सेंक लेते ताकि दानों में नमी न रहे। नमी युक्त ाने बमुश्किल पिसते हैं, यह तो हम ानते हैं। हमारे सौभाग्य से इनामगांव में जो भी भूंजने का काम करते थे वे शायद काफी व्यस्त लोग थे जिन्हें एक साथ कई काम करने पड़ते होंगे। नतीजतन काफी सारे दाने जलकर फिंक जाते थे। जैसी कि हिंदुस्तानियों की परंपरा है, ऐसे कूड़ों को लोग अपने घरों के बाहर फेंक देते थे। ये दाने वहीं पड़े रहे और 'अहिल्या' की तरह डेक्कन कॉलेज के पुरातत्व-शास्त्रियों का इंतज़ार करते रहे। (हमें बताया जाता है कि इनामगांव में विधिवत खुदाई से 163 घरों के अवशेष मिले हैं, जिनमें से 43 घरों या उनके सामने से जले दाने मिले हैं।)

इनामगांव में किसी समय लापरवाही या फिर कोई और कारण से दो-तीन

घर जलकर राख हो गए। उन घरों से भी हमें जले दाने मिले हैं। (इनामगांव में दो जले घर मिले हैं जिनमें से एक से जले दाने मिले हैं।)

कौन-कौन से दाने थे यह? गेहूं, जौ, अरहर, मटर, मोठ, बाल (एक तरह की सेम), ज्वार, रागी, उड़द, मूंग, चना, खेसरी दाल और चाकल के कुल तीन दाने। यानी कि पांच तरह के अनाज, और आठ तरह की दालें। ये सारे अलग-अलग समय पर अलग-अलग तरह की ज़मीन पर उगाते हैं। हरेक की पानी की ज़रूरत अलग है। इससे यह मतलब निकलता है कि इनामगांव के लोग किसी एक या दो तरह की फसलों पर निर्भर न रहकर कई तरह की फसलों का उपयोग करते थे। सूखे या बाढ़ की स्थिति में एक फसल नष्ट भी हो जाए तो दूसरी फसल पकने की उम्मीद तो रहती। आप जानते हैं कि इनामगांव जैसे वृष्टि छाया क्षेत्र में बारिश की संभावना बहुत कम है – यह नहीं कहा जा सकता कि किस मौसम में पानी कम गिरेगा कि सामान्य या ज़्यादा। उन्हें हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना होता था। कई तरह की फसल बोकर प्राचीन इनामगांव के लोग अपने जोखिम कम कर रहे थे। ताकि बाढ़ हो या सूखा कोई फसल तो बच ही जाए। अर्थात सूखाग्रस्त इलाके में भोजन की समस्या से निपटने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका हुआ।

फिर भी यह सवाल ज़रूर उठता है कि इन सब में से कौन-सी फसल अधिक महत्वपूर्ण थी और कौन-सी कम। यह पता करना खासा मुश्किल काम है। यह कहा जा सकता है कि जो दाने अधिक मात्रा में मिले वे अधिक उगाए जाते होंगे। अगर ऐसा है तो विभिन्न अनाज या दालों के दानों की संख्या की तुलना से यह पता लगाया जा सकता है। याद कीजिए कि ये दाने हमें मिले कैसे – भूंजने में जो जल गए वे ही तो बचे हैं। ज़्यादातर अनाज ही भूंजे जाते हैं, दालों को कम ही भूंजते हैं। तो गेहूं या जौ के जले हुए दानों के मिलने की संभावना अधिक है, बनिस्बत दालों के। यानी अलग-अलग फसलों के दाने उसी अनुपात में नहीं बचते जिस अनुपात में वे उगाए जाते होंगे।

उदाहरण के लिए गेहूं और जौ की बात लें। यह देखा गया कि बस्ती से मिले जले दानों में से जौ के दानों का कुल वज़न गेहूं के दानों के कुल वज़न से 12 गुना ज़्यादा था। तो आप अनुमान लगा बैठेंगे कि जौ गेहूं से कहीं अधिक उगाया जाता होगा। वहीं पास में खुदाई के दौरान लोगों की टट्टियों के जो अवशेष मिले उनमें गेहूं का वज़न जौ के वज़न से दुगना है! तो सवाल उठता है कि बस्ती से मिले दानों के अवशेष और लोगों की टट्टियों से मिले अवशेष, दोनों में इतनी विसंगति कैसे? इसका एक कारण यह हो सकता है कि मनुष्य खुद गेहूं खा रहे थे और जानवरों को जौ खिला रहे थे। यानी मामला काफी उलझा हुआ है।

अगर आप फसलों की सूची को ध्यान से देखें तो पाएंगे कि ज़्यादातर रबी की फसलें हैं। एक सूखाग्रस्त इलाके में फसल

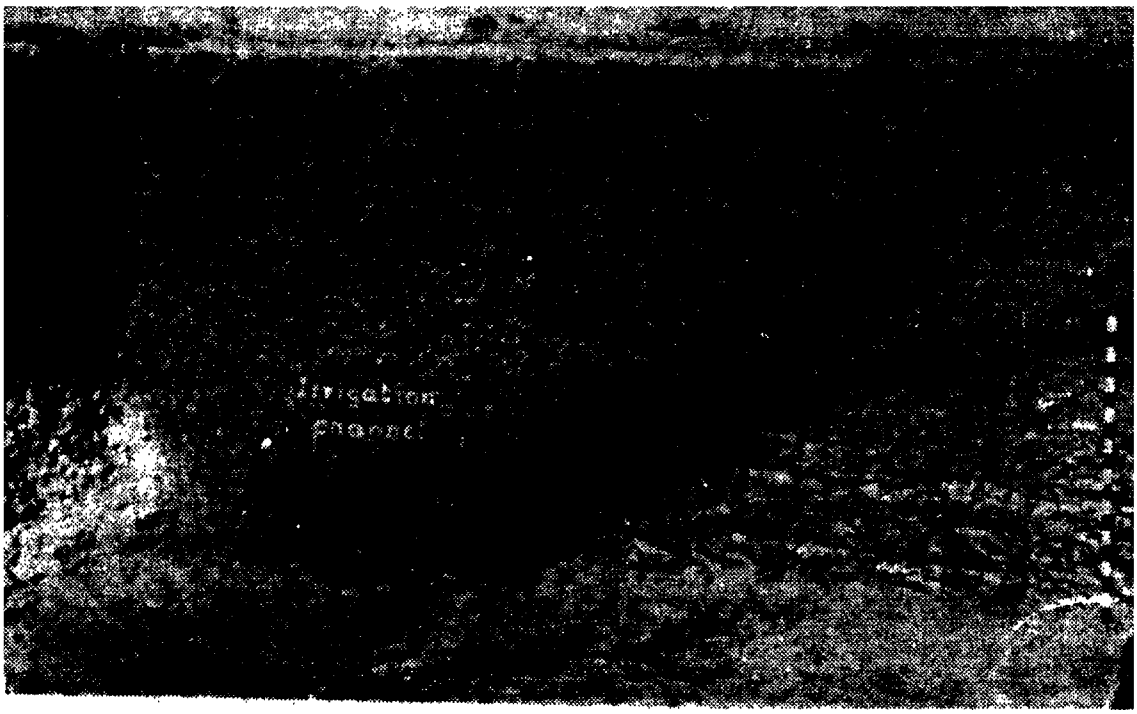

इनामगांव के लोग रबी में गेहूं की फसल कैसे ले पाए: पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा खोज निकाली गई नहर का एक हिस्सा। यह मुख्य नहर थी जो उस समय गांव के पास से गुज़र रही एक नदी से निकाली गई थी और करीब साढ़े तीन मीटर गहरी थी। इससे एक छोटी नहर भी निकलती थी जो पानी खेतों तक ले जाती थी।
बाद के काल में यह धीरे-धीरे पुर गई। यह चित्र इसी नहर की एक खड़ी काट है। इसमें अर्धचंद्राकार नहर साफ दिख रही है। यह नहर इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत में नहर सिंचाई का यह पहला ठोस प्रमाण है।

खरीफ में न लेकर रबी में लेना आश्चर्य में डालता है। इसके कई कारण हो सकते हैं – यहां की मिट्टी काली चिकनी है जो बारिश में काफी पानी सोख लेती है और भारी हो जाती है। इस कारण इस पर रबी में ही खेती संभव है। काली मिट्टी में मानसून की बारिश की नमी सर्दियों तक बनी रहती है।

गेहूं को इस इलाके में बगैर सिंचाई के नहीं उगाया जा सकता। इनामगांव की खुदाई में पाया गया कि शुरुआती 'मालवा-काल' में वहां, गेहूं नहीं उगाया जाता था, और अंत के 'पतन' वाले काल में भी नहीं। केवल समृद्ध 'जोर्वे-काल' में गेहूं उगाया गया। और फिर डेक्कन कॉलेज के लोग खुदाई करते-करते एक मज़ेदार चीज़ खोज बैठे। पास की एक नदी से एक नहर निकाली गई थी जिसके एक तरफ़ ऊंचा किनारा भी बनाया गया था। इस नहर से एक और छोटी नहर निकलती थी जो पानी को खेतों तक ले जा सकती थी। मुख्य नहर साढ़े तीन मीटर गहरी थी और नीचे चट्टान तक खोदी गई थी। चट्टान तक इसलिए ताकि रिसन से पानी व्यर्थ न

जाए। इस नहर की चौड़ाई 4 मीटर थी, यानी इसमें काफी मात्रा में पानी लाया जा सकता था और ज़रूरत पड़ने पर पानी को तालाब की तरह रोका भी जा सकता था। शायद इसी कारण उसके एक तरफ सेतु भी बनाया गया था।

यह खोज काफी महत्व की है क्योंकि इससे पहले भारत में नहर-सिंचाई के ठोस प्रमाण नहीं मिलते। इनामगांव के लोग वर्षा ऋतु में नाले में व्यर्थ बह रहे पानी को नहरों द्वारा खेतों में पहुंचाते थे और अतिरिक्त पानी को संचित कर शायद ठंड के मौसम में गेहूं की फसल को पानी देते थे। इस तरह उन्होंने अपने इलाके की मौसमी समस्या से निपटने का एक महत्वपूर्ण तरीका खोज लिया था।

जंगल और शिकार

इनामगांव से हड्डियों के 2400 टुकड़े मिले। इनमें हाथी, गेंड़ा, हिरण, बारासिंगा, नीलगाय, जंगली भैंसा, चीतल से लेकर सुअर आदि जानवरों तक की हड्डियां हैं। इनके अलावा काफी मात्रा में मछलियों की हड्डियां भी मिली हैं। इससे यह पता चलता है कि विकसित खेती के बावजूद वे लोग मांसाहारी भोजन पर निर्भर थे।

जंगलों से शिकार करने के अलावा लोग कई तरह के फल और साग बटोर लाते थे। ऐसे सबूत मिलते हैं कि वे बेर के खास शौकीन थे। उनके घरों से बेर के खूब सारे बीज मिले हैं। ऐसे सबूत भी मिले हैं कि बेर के अलावा जामुन और खजूर भी बटोरा जाता था।

कोठियां

शिकार और पशुपालन की तुलना में खेती में उत्पादन एक साथ मिलता है जिसे सालभर के लिए भरकर रखना पड़ता है। तो ज़रूरी है कि लोग घरों में सालभर अनाज रखने की कोई व्यवस्था

अनाज भरकर रखने के लिए बड़े घड़े

करें। इनामगांव में लोगों ने इस काम के लिए घरों में कोठियां बना रखी थीं। लेकिन इनमें भी एक दिलचस्प बात देखने को मिली। एक आम भारतीय आमतौर पर रोज़ाना लगभग 400 ग्राम अनाज खाता है, यानी उसे सालभर में 145 किलो अनाज की ज़रूरत पड़ती है। इस तरह चार सदस्यों वाले एक परिवार के लिए सालभर में लगभग 650 किलो अनाज की ज़रूरत होगी। इनामगांव की कोठियों में 700 किलो तक अनाज रखा जा सकता था। यानी कि घरेलू उपयोग के लिए केवल सालभर के लिए अनाज रखा जाता था। लेकिन अकाल के समय के लिए भी क्या वे कोई बंदोबस्त करते थे?

इनामगांव के सबसे बड़े घर के बगल में एक इमारत मिली जिसमें किसी के रहने के लक्षण तो नहीं दिखे लेकिन खूब सारी कोठियों के अवशेष और उन्हें रखने के लिए बने चबूतरे मिले। शायद यह गांव के मुखिया का घर और उसका अनाज भंडार रहा होगा। इसमें लोग समय-समय पर कुछ अनाज देते रहे होंगे जिसे बाद में अकाल के समय उपयोग में लाया जा सकता था या ज़रूरतमंद लोगों को दिया जा सकता था।

कैसा समाज?

हमने ऊपर एक मुखिया का ज़िक्र किया है। उस गांव में कोई मुखिया था और वह घर उस मुखिया का था, यह कैसे कहा जा सकता है? और मुखिया हो भी तो कैसा मुखिया? सबसे पहली बात तो यह है कि वह घर सामान्य घरों

मुखिया के घर से मिला बच्चे का कंकाल

से काफी बड़ा था। उसमें चार-पांच लोगों को दफनाया गया था। इनामगांव में मृतकों को घर के अंदर ही दफनाने की प्रथा थी। आमतौर पर लाशों के पैर काटकर उन्हें दफनाते थे जबकि इस घर में प्राप्त कम-से-कम पांच लाशों के पैर नहीं काटे गए थे। इसका मतलब यह है कि इस परिवार के लोग कुछ फर्क थे, कुछ खास। उल्लेखनीय है कि यहां मिले एक बच्चे के कंकाल पर कीमती मणि और तांबे के हार हैं। आम तौर पर जब बच्चों के गले में ऐसी चीज़ें मिलती हैं तो उनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि ये हार

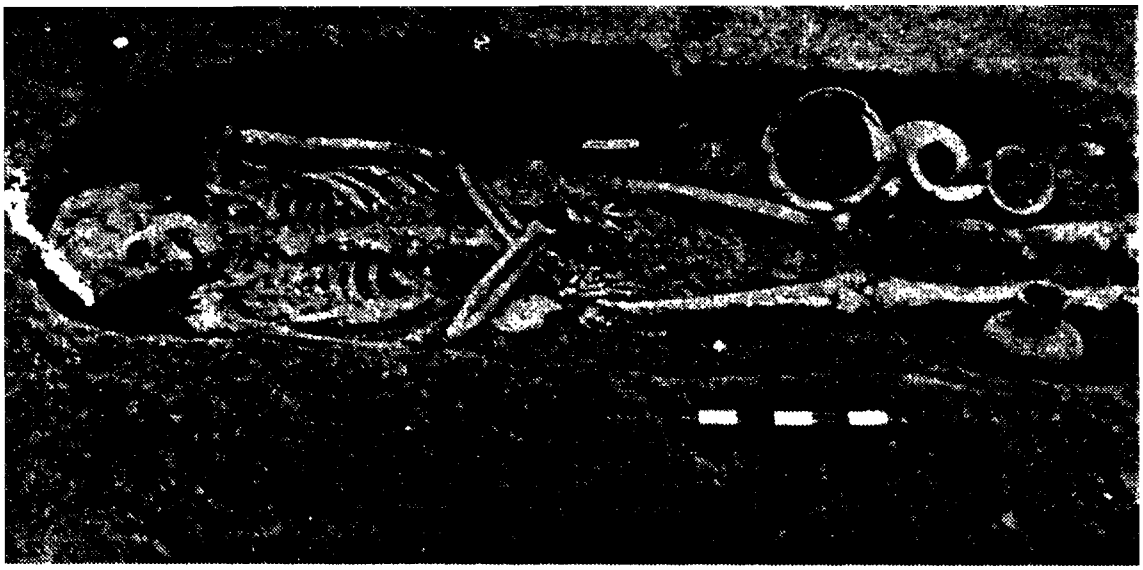

एक साधारण आदमी की कब्र: इनामगांव में मृतकों को घर के भीतर ही दफनाया जाता था। दफनाने से पहले उनके पैर काट दिए जाते थे। ऐसी बहुत-सी कब्रें खुदाई के दौरान मिलीं। कैसे मालूम पड़ा कि ये कब्र साधारण आदमी की है? पूरी बस्ती में एक बड़े घर में दफन सिर्फ पांच कब्रें ऐसी मिलीं जिनके पैरे नहीं कटे थे, इनमें से एक बच्चे के कंकाल पर कीमती मणि और तांबे के हार थे। यानी कि ये लोग कुछ खास थे, जबकि बाकी सारी कब्रों में दफन लोगों के पैर कटे थे।

उनकी अपनी 'कमाई' नहीं है बल्कि एक वंशानुगत ओहदे की निशानी है।

अगर हम यह भी गौर करें कि इनामगांव को घेरकर एक दीवार बनी थी और यहां नहरें, बंधान और गोदाम थे और यहां के लोगों का दूर-दूर के लोगों से लेन-देन का संबंध था तो हम मानकर चल सकते हैं कि इन सबके संयोजन में किसी-न-किसी प्रकार के मुखिया का हाथ ज़रूर रहा होगा। लेकिन एक महत्वपूर्ण बात है। 'मुखिया' के घर से अन्य घरों की तुलना में बहुत धन दौलत की निशानियां नहीं मिली हैं। यानी यह कहा जा सकता है कि मुखिया और सामान्य लोगों के बीच आर्थिक खाई बहुत चौड़ी नहीं थी।

लेकिन वो गोदाम जो मुखिया के घर से लगा हुआ था...? इस प्रकार के दूसरे छोटे कबीलों के अध्ययन से पता चलता है कि ये मुखिया कबीले के लिए अनाज संचयन करते थे, यहां तक कि दूसरों से अपने खेतों में बेगार करवाते थे, लेकिन उनका फर्ज़ बनता था कि समय-समय पर सब लोगों को खिलाएं-पिलाएं, ज़रूरतमंदों को सहारा दें और अकाल के समय में अपने गोदाम से सबको खिलाएं। अगर वह ऐसा नहीं करे तो लोग उसका कहा मानने से इंकार कर देते तथा किसी और को अपना मुखिया बना लेते थे।

तो मुखिया बने रहने के लिए उसे सबके प्रति अपनी उदारता दिखाते रहना पड़ता था। शायद इसी कारण अपने इनामगांव का मुखिया भी कभी 'धन'

क्या खाते थे?

इनामगांव के लोग क्या खाते थे यानी उनका भोजन संतुलन कैसा था, यह पता करने के लिए उनकी हड्डियों की जांच की गई। हड्डियों में मिलने वाली मैंगनीज़, ज़िंक, तांबा, स्ट्रोंशियम, मैग्नीशियम आदि की मात्रा से वैज्ञानिक भोजन संतुलन के बारे में तय कर पाते हैं।

यह पाया गया कि समृद्ध जोर्वे काल की तुलना में बाद के काल में भोजन में ज़िंक और तांबे की मात्रा अधिक थी – इसका यह मतलब निकाला जाता है कि बाद के काल के लोग मांसाहार पर अधिक निर्भर थे। इसी तरह समृद्ध जोर्वे काल के लोगों की हड्डियों में मैंगनीज़ की मात्रा अधिक थी – इसका मतलब निकाला गया कि वे लोग जंगली पौधों और मछलियों को ज़्यादा खाते थे।

इसी तरह समृद्ध तथा साधारण लोगों और कारीगरों आदि के घरों से इकट्ठी की गई हड्डियों की तुलनात्मक जांच से पता चला कि समृद्ध लोगों का भोजन अधिक पौष्टिक था। हड्डियों की जांच से एक और जानकारी मिली कि समृद्ध जोर्वे काल में मां अपने नवजात शिशु को लगभग एक साल तक और बाद के काल में दो-तीन साल तक अपना दूध पिलातीं थीं।

इकट्ठा नहीं कर पाया और उसके व दूसरों के बीच का फर्क उन्नीस-बीस ही था।

लेकिन इस बात का ताल्लुक सूखाग्रस्त इलाके में सफलता से जीने के साथ भी है। चूंकि यहां के लोगों के बीच साधनों का वितरण अधिक असमान नहीं था, और सबके पास अपनी न्यूनतम ज़रूरतों को पूरा करने के लिए साधन उपलब्ध थे, और उन्हें किसी शासक को कर नहीं देना पड़ता था, और वे अपने अतिरिक्त उत्पादन को बुरे दिनों के लिए संचयित कर सकते थे, और ज़रूरत पड़ने पर एक दूसरे की मदद कर सकते थे – इसीलिए शायद वे इन कठिन इलाकों में भी 600 वर्ष तक सफलता से रह पाए।

उजाड़ की ओर....

इनामगांव में खुदाई करने वाले बताते हैं कि ई.पू. 1000 से 700 के बीच जीवन स्तर गिरता गया और अंत में यह गांव वीरान हो गया। अब यह सवाल तो उठेगा ही कि ऐसा क्यों हुआ।

इस दौर में बड़े आयताकार घरों की जगह छोटे गोल घर बनने लगे थे, घरों के अवशेषों में से खेती से प्राप्त होने वाले बीजों की मात्रा कम हो जाती है और बेर जैसे जंगली फलों के बीज और जानवरों ही हड्डियों की मात्रा बढ़ जाती है। इन सारी हड्डियों में से हिरणों की हड्डियों की मात्रा 5% से बढ़कर 14% हो जाती है। कई तरह के जंगली पौधों

के अवशेष मिलने लगते हैं जिससे लगता है कि लोग अब इनपर काफी निर्भर होने लगे थे। सिलबट्टों की मात्रा में भी भारी कमी आ जाती है। गेहूं उगाना बंद हो जाता है और नहरें भी मिट्टी से पुर जाती हैं। बर्तन-भांडों की बनावट में भी वो पुराना हुनर नहीं दिखता। पहले की तरह उनपर अब चित्रण भी नहीं दिखता है।

जानवरों की हड्डियों में से भेड़ व बकरियों की हड्डियों का अनुपात 25% से बढ़कर 72% हो जाता है। गाय/बैल की हड्डियों की मात्रा 53% से घटकर 14% रह जाती है। आजकल के पशुपालकों के संदर्भ में देखा गया है कि के समय में लोग गाय/बैल जैसे भारी जानवरों की बजाए भेड़-बकरी रखना ज़्यादा पसंद करते हैं। गाय बैल तो खेतिहर लोग ज़्यादा पसंद करते हैं।

कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि लोग खेती-बाड़ी कम करके पशुपालन करने लगे और शिकार व जंगली फल बटोरने लगे। इस परिवर्तन के क्या कारण हो सकते हैं?

कई तरह की खोजों के बाद इतिहासकार, पुरातत्ववेत्ता और मौसम वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि ई.पू. 1000 से 500 तक अपेक्षाकृत सूखा मौसम बना रहा। इससे पहले ई.पू. 1700 से 1000 तक वर्षा अधिक रही। यह परिस्थिति लगभग पूरे प्रायद्वीप में बनी रही। इस सूखे वातावरण के कारण लोग खेती छोड़ने पर विवश हुए और कम वर्षा की स्थिति में पशुपालन और जंगल के सघन उपयोग की तरफ मुड़े। बताया जाता है कि ई.पू. 1000 के आसपास पूरे पश्चिम और मध्य भारत में बहुत-सी संपन्न बस्तियां उजड़ गईं। ये बस्तियां फिर से ई.पू. 500 तक आकर ही आबाद हो सकीं।

इनामगांव के लोगों ने तो इतनी जल्दी हार नहीं मानी। उन्होंने अपनी जीवन शैली बदली और कुछ 300 साल और गुज़ारा चलाते रहे। उसके बाद ही उजड़ा इनामगांव।

इनामगांव की खुदाई भारत की सबसे सघन और बहुआयामी खुदाईयों में से एक थी। इस काम की शुरुआत पुरातत्वशास्त्री डॉ. हसमुख धीरजलाल सांकलिया ने की थी। उनके नेतृत्व में प्रो. एम. के. धवलीकर, डॉ. जेड. डी. अंसारी, डॉ. एस. एन. राजगुरु. डॉ. यू. डी. गोगरे तथा डॉ. एम. डी. काजले आदि लोगों ने इस काम को पूरा किया।

संदर्भ ग्रंथ: First Farmers Of Deccan - एम. के. धवलीकर
Excavation In Inamgaon vol I, II & III- एच. डी. सांकलिया और एम. के. धवलीकर